315hi13

13

अर्थव्यवस्था

मध्यकालीन भारत में अपने बुनियादी जीविकोपार्जन के लिए लोग अनेक प्रकार के आर्थिक क्रियाकलाप करते थे। उनके कामों का दायरा खेती–बाड़ी से लेकर कारीगरी के उत्पादनों, व्यापार और वाणिज्य और इनसे संबंधित वित्तीय सेवाओं तक विस्त त था। इस अवधि के दौरान इन कार्यकलापों में लगातार परिवर्तन होते रहे। राज्य अपने अस्तित्व और विस्तार के लिए संसाधनों की पूर्ति विभिन्न प्रकार के करों के संग्रहण से करता था।

इस पाठ में, आप राज्य द्वारा संसाधनों के उत्पादन और उनके संचालन के विविध उपायों और व्यापार तथा वाणिज्य संबंधी गतिविधियों के बारे में पढ़ेंगे। क षि उत्पादन के खंड में हम खेतों की जुताई की सीमा, फसल के पैटर्न (नमूने) और सिंचाई के साधनों और तरीकों के संबंध में चर्चा करेंगे। कराधान पद्धति के अधीन भूमि लगान तथा प्रशासन में मध्यस्थ जागीरदारों और किसानों पर बोझ के संबंध में विश्लेषण करेंगे। गैर–क षि उत्पादों के खंड में आप विविध प्रकार के मध्यकालीन भारतीय शिल्पों, और उनके निर्माण से जुड़ी तकनीक और उत्पादन की व्यवस्था इत्यादि के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे। इसमें आप मध्यकालीन भारतीय व्यापार और वाणिज्य के विविध पहलुओं के बारे में भी जानेंगे, जैसे व्यापारिक वर्ग – सर्राफ़, व्यापारी, दलाल इत्यादि और व्यापारिक कार्य–व्यवहार, लेन–देन के बिल (हुंडी), दलाली और बीमा इत्यादि।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- भारत में खेतीबाड़ी की सीमा, उगाई जाने वाली मुख्य फ़सलों; और सिंचाई के साधनों और तरीकों के बारे में बता सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत की लगान पद्धति का विश्लेषण कर सकेंगे;
- लगान इकट्ठा करने में जागीरदार मध्यस्थों की भूमिका की जानकारी दे सकेंगे;
- शिल्पकारी की विविध वस्तुओं के निर्माण के संबंध में चर्चा कर सकेंगे ;
- गैर–क षि उत्पादनों की व्यवस्था और महत्त्व के बारे में बता सकेंगे;
- अन्तर्देशीय और विदेश व्यापार का वर्णन कर सकेंगे;

- मुख्य वाणिज्य संबंधी कार्य व्यापार और व्यापार से जुड़े कार्मिकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और;
- इस अवधि की मुद्रा प्रणाली के बारे में विस्त त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13.1 क षि संबंधी उत्पादन

मध्यकाल के दौरान उत्पादित कुल मात्रा में क षि उत्पादन का हिस्सा सर्वाधिक था। क षि से होने वाली आय राज्य की आय का मुख्य स्रोत थी।

1. खेती-बाड़ी की सीमा

खेती–बाड़ी की सीमा को इस संदर्भ में समझा जा सकता है कि इस संबंध में जाना जा सके कि कुल खेती योग्य उपलब्ध भूमि में से कितनी भूमि पर वास्तव में जुताई हो रही थी। गौर करने की बात यह है कि व्यक्ति के पास पर्याप्त भूमि थी, यानी जितनी भूमि पर किसान असल में जुताई कर रहे थे उससे कहीं ज़्यादा भूमि उपलब्ध थी। ऐसी स्थिति में खेती के विस्तार से उत्पादन को बढ़ाया जा सकता था, यानी नए–नए क्षेत्रों को क षि भूमि के अधीन लाया जा सकता था।

उदाहरण के लिए, समकालीन संसाधनों से हमें सूचना मिली है कि मुगल सल्तनत की अवधि के दौरान गंगा–यमुना दोआब की उपजाऊ भूमि के विशाल भूमि–क्षेत्र, वनों और घास के मैदानों से ढके हुए थे। मुग़ल काल में भी पर्याप्त भूमि लोगों के पास उपलब्ध थी।

इसलिए इस कालावधि के शासक इस नीति पर डटे रहे कि अब तक जिन क्षेत्रों को खेती की भूमि के अधीन नहीं लाया गया है, उन क्षेत्रों तक क षि भूमि का विस्तार किए जाए। जनजातीय, पिछड़े और दूर–दराज के क्षेत्रों में भी खेती–बाड़ी शुरू की गई। वनों की कटाई की गई और क षि योग्य व्यर्थ पड़ी (परती) भूमि को खेती योग्य भूमि में परिवर्तित किए गया। सल्तनत से मुग़लकाल की अवधि के दौरान बहुत अधिक मात्रा में क षि की सीमा का विस्तार हुआ। मुग़ल काल तक आते–आते उनके साम्राज्य के लगभग सम्पूर्ण भाग में खेती–बाड़ी होने लगी थी, यद्यपि मुग़लों के क षि कार्यों से जुड़ी आबादी (किसानों) की वास्तविक जरूरतों से अभी भी काफी ज़्यादा भूमि उपलब्ध थी। अकबर की तुलना में औरंगज़ेब के शासनकाल में क षि उत्पादनों में अत्यधिक व द्धि हुई। बिहार, अवध और बंगाल के कुछ क्षेत्रों में क षि विस्तार का श्रेय वनों की कटाई को जाता है जबकि पंजाब और सिंध में इसका कारण था नहरों का जाल बिछाना।

2. फसलों का स्वरूप

मध्यकालीन भारतीय किसान कई प्रकार की खाद्य फ़सलें, नकदी फ़सलें/(तुरंत बिकने वाली फ़सलें), सब्ज़ियों और मसालों की फ़सलें उगाते थे। वे अपने समय की फ़सल उगाने की प्रचलित उच्च स्तरीय तकनीकों से परिचित थे, जैसे – दोहरी फ़सल लेना, वर्ष में तीन फसलों की कटाई, फसल चक्र, खाद का उपयोग और सिंचाई के लिए विभिन्न प्रकार की प्रणालियाँ।

(क) **खाद्य फ़सलेंः** मुख्य खाद्य फ़सलें, जिनका उत्पादन किए जाता था, थीं – चावल, गेहूं, जौ (जई), ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें, जैसे – चना, अरहर, मूंग, मोठ, उड़द और खिसारी इत्यादि।

(ख) **नकदी फ़सलें:** गन्ना, कपास, नील (रंगाई का नीला रंग निकालने के लिए प्रयुक्त) अफ़ीम, रेशम इत्यादि फ़सलें मध्यकालीन भारत की कुछ प्रमुख नकदी फ़सलें थीं। गन्ने से शराब बनाना, चौदहवीं सदी तक बहुत फैल चुका था। मुग़ल काल में, गन्ना सर्वाधिक उगाई जाने वाली नकदी फ़सलों में शामिल था और बंगाल में सर्वोत्तम गुणवत्ता के गन्ने की फसल उगाई जाती थी।

मुग़ल काल के दौरान, बयाना (आगरा के पास) और सरखेज (अहमदाबाद के पास) में सर्वश्रेष्ठ गुणवत्ता के नील का उत्पादन होता था। सेरीकल्चर (शहतूत के पत्तों पर रेशम के कीड़े पालना), जो सल्तनत काल में छोटे स्तर पर था, मुगल काल तक आते–आते बहुत बड़े पैमाने पर फैल चुका था। बंगाल, रेशम उत्पादन के लिए एक मुख्य क्षेत्र बनकर उभरा। बिहार और मालवा के मुगल प्रान्तों में सर्वोत्तम गुणवत्ता की अफ़ीम पैदा की जाती थी। तम्बाकू का उत्पादन भारत में, सोलहवीं सदी के दौरान पुर्तगालियों द्वारा प्रारंभ किए गया था और इसके बाद की अवधि में इसका बहुत व्यापक पैमाने पर उत्पादन होने लगा। सूरत और बिहार मुख्य तम्बाकू उत्पादक केन्द्रों के रूप में उभरे। इसी प्रकार, सत्रहवीं सदी से, बहुत बड़े पैमाने पर कॉफ़ी का उत्पादन होने लगा था।

(ग) **फल और सब्ज़ियाँ:** मध्यकाल में फलों की फ़सलें उगाने के खेती के कामों में बहुत तेजी से विकास हुआ। दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने फलों को उगाने के काम को बहुत सक्रियता से बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए, फिरोज़शाह तुग़लक ने दिल्ली के आस–पास फलों के 1200 बाग़ लगाए। मुग़ल बादशाहों और उनके कुलीनों ने भी फलों के बहुत बड़े–बड़े वैभवशाली बाग़ बनवाए।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों के दौरान, बाहरी एजेंसियों के माध्यम से, भारत का बहुत से नए फलों से परिचय हुआ। उदाहरण के तौर पर, पुर्तगालियों ने अनानास, पपीता और काजू के सूखे मेवे इत्यादि से परिचित कराया, तो चेरी का आयात काबुल से हुआ। लीची और अमरूद की शुरूआत भी इसी अवधि में भारत में हुई। मध्यकालीन भारतीय किसान अनेक प्रकार की सब्ज़ियों की फ़सलें उगाते थे। अबुल फ़ज़ल ने, अपने आईना–ए–अकबरी में उन सब्ज़ियों की सूची दी है जो उस समय उपयोग में लाई जाती थीं। आलू, मिर्च और टमाटर से परिचय उत्तर मध्यकाल के दौरान हुआ।

(घ) **मसाले:** काली मिर्च, लौंग, इलायची, केसर, पान का पत्ता इत्यादि कुछ मुख्य मसालों की खेती मध्यकालीन भारतीय किसान करते थे। मुग़ल काल के आने तक भारत के दक्षिणी समुद्री तट से भारी मात्रा में विविध प्रकार के मसालों का निर्यात, एशिया और यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में किए जाने लगा था।

3. सिंचाई के साधन और उपाय

भारतीय क षि, अपनी सिंचाई संबंधी आवश्यकताओं के लिए हमेशा से ही प्राक तिक और क त्रिम, दोनों प्रकार के विविध संसाधनों पर निर्भर रही है। जैसे वर्षा, कुएँ, नदियाँ, तालाब, नहरें, झीलें इत्यादि। बाँध, झीलें और जल भंडारक, सिंचाई के कुछ प्रमुख साधन थे। दक्षिण भारत में, राज्य स्तर पर, स्थानीय शासकों (चीफ़ों) में और मंदिर के प्रबंधकों ने इस उद्देश्य के लिए नदियों पर अनेक बांधों का निर्माण करवाया। उदाहरण के लिए,

विजयनगर के शासकों द्वारा वहाँ के आसपास के क्षेत्रों की सिंचाई संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तुंगभद्रा नदी पर मडग झील का निर्माण कराया था। ढेबर, उदयसागर, राजसमंद और जयसमंद (सभी मेवाड़ में); बालसन (मारवाड़) और मानसागर (अम्बर) इत्यादि झीलें और जल भंडारक मध्यकालीन राजस्थान में सिंचाई के प्रमुख स्रोतों के रूप में काम में आते थे।

सिंचाई के सामान्य साधन के रूप में कुओं का जाल, देश के विभिन्न भागों में एक समान रूप में फैला हुआ था। कुओं से पानी बाहर निकालने के लिए कई प्रकार के क त्रिम यंत्रों (युक्तियों) का उपयोग किए जाता था। इस प्रयोजन के लिए कुओं पर पुलियां (चरखियाँ) लगाई जाती थीं जो एक अन्य यंत्र लीवर के सिद्धान्त पर काम करती थी। इस तरीके में एक खड़े बीम के काँटे को झूलती हुई स्थिति में रखा जाता था जिसके एक सिरे को एक रस्सी से बांधा जाता था और दूसरे सिरे पर भरी हुई बाल्टी के वज़न से ज्यादा वज़न बंधा रहता था। तथापि, सल्तनत शासन काल की अवधि के दौरान भारत में 'पर्शियन व्हील' (रहट) के उपयोग की शुरूआत, इस अवधि के दौरान उपयोग में लाई जाने वाली जल उठाने की सभी युक्तियों (यंत्रों) में से, सबसे उच्च स्तरीय थी। इस पद्धति में एक पहिए के रिम के चारों ओर छोटे–छोटे डिब्बों की शक्ल के बर्तनों की लड़ी जुड़ी होती थी, गियर की एक यांत्रिकी भी इसके साथ जुड़ी होती थी और पशु शक्ति के बल पर इस पहिये को घुमाया जाता था।

दिल्ली की सल्तनतों ने नहरों से सिंचाई को, विशेष रूप में प्रोत्साहित किए। गयासुद्दीन तुग़लक (1320–1325 ईस्वी) ने इस प्रयोजन के लिए अनेक नहरों का निर्माण करवाया। परन्तु, फ़िरोज़शाह तुग़लक ने नहरों का सबसे बड़ा जाल बिछाया। चार ऐसी नहरों का उल्लेख समसामयिक संसाधनों में आम तौर पर मिलता है। ये थीं—(i) सतलुज से घग्गर, (ii) नांदवी और सिमूर पहाड़ियों से प्रारंभ होकर अरासानी तक (iii) घग्गर से, गाँव की पहुँच से हिरान्सी खेड़ा तक, और (iv) यमुना से खुदाई शुरू करके, फ़िरोज़ाबाद तक बढ़ाई गई। दिल्ली सल्तनत की नहरों के निर्माण की परंपरा को मुग़ल शासकों ने भी जारी रखा। उदाहरण के लिए, शाहजहाँ के राज्य के दौरान निर्मित कराई गई 'नहर फ़ैज', यमुना से जल पूर्ति करके एक बहुत बड़े क्षेत्र की सिंचाई करती थी।

पाठगत प्रश्न 13.1

1. क षि के लिए भूमि की क्या उपलब्धता थी?

2. मध्यकालीन भारत की चार खाद्य फ़सलों और चार नकदी फ़सलों की सूची बनाए।

3. मध्यकाल के दौरान भारत में जिन फसलों का आगमन हुआ, उनमें से चार के नाम लिखें।

4. पर्शियन व्हील (रहट) क्या था?

13.2 भू-राजस्व का मूल्यांकन और भू–राजस्व की मांग का परिमाण

मध्यकालीन राज्य अपनी आय का अधिकतम भाग भू–राजस्व से प्राप्त करते थे। अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर जैसे मध्यकालीन शासकों के प्रयासों से धीरे–धीरे भू–राजस्व प्रशासन की एक व्यापक कार्य व्यवस्था का विकास हुआ। अपने पूर्ण विकसित रूप में भू–राजस्व प्रशासन में बेहतर नीतियाँ शामिल थीं। वे थीं : (i) भू–राजस्व के मूल्यांकन के प्रयोजन से क षि योग्य भूमि का वास्तविक परिमापन (ii) मिट्टी की उपजाऊ शक्ति के आधार पर भूमि का वर्गीकरण (iii) भू–राजस्व मांग के अनुरूप भूमि की राजस्व की दर निर्धारित करना (iv) इसके संग्रहण के लिए व्यापक कार्य प्रणाली स्थापित करना, और (v) नकद रूप में भू–राजस्व के मूल्यांकन और संग्रहण के लिए रूपरेखा तैयार करना।

मध्यकाल में लगान के मूल्यांकन और संग्रह करने के लिए अनेक प्रकार के तरीकों का उपयोग किए जाता था। सबसे सरल और मौलिक तरीका था, फ़सलों में भागीदारी या बँटाई। कुल उत्पादन का कुछ भाग राज्य के भाग के रूप में निर्धारित किए जाता था। इस तरीके में कुल उत्पादन में से राज्य का हिस्सा निर्धारित कार्मिकों द्वारा एकत्रित किए जाता था। इस तरीके में लगान संग्रह करने में भूमि के माप की कोई भूमिका नहीं थी। ध्यान का मुख्य केन्द्र था वास्तविक उत्पादन।

> **<u>फसल में भागीदारी</u>** – तीन प्रकार की फसल में भागीदारी प्रचलित थी –पहली, अनाज प्राप्त होने के बाद छँटाई की जगह पर ही फसल का विभाजन; दूसरी, 'खेत बटाई' यानी खड़ी फसल पर खेत का विभाजन; और तीसरी, लंगबटाई जिसमें फसल काटने के बाद इसे अनाज अलग किए बगैर ढेरों में बांटा जाता था। राज्य के हिस्से को इसी तरीके से निर्धारित किया जाता था।

दूसरे तरीके में, जिसे 'कानकुट' कहते थे, भूमि का माप महत्त्वपूर्ण था। इस तरीके में भूमि को पहले नापा जाता था – मापने के बाद भूमि की उत्पादकता का आकलन किए जाता था, नापे गए भू–क्षेत्र की प्रति इकाई के अनुसार लगान की माँग निर्धारित करने के लिए शेरशाह सूरी ने आकलन के तरीके को सुधारा। उत्पादकता का आकलन करने के लिए तीन प्रकार की भूमि, यानी अच्छी, मध्यम और खराब भूमि से, नमूने के रूप में कटाई की जाती थी और एक औसत फसल हासिल की जाती थी। राज्य की मांग, औसत फसल का एक तिहाई ($^1/_3$) हिस्सा निर्धारित किए गया था।

प्रत्येक फसल के लिए प्रति बीघा के अनुसार लगान की मांग घोषित की गई थी जिसे शेरशाह की 'राई' कहते थे। अकबर के प्रारंभिक वर्षों में सम्पूर्ण साम्राज्य के लिए यही दरें अपनाई गई थीं। यहाँ राज्य की मांग को एक प्रकार से नकार दिया गया था, परन्तु

उस वक्त उन पर लागू मूल्यों के हिसाब से इसे नकद रूप में भी एकत्रित/भुगतान किए जा सकता था।

इस तीसरे तरीके को ज़ब्त कहते थे, क्योंकि इसमें मूल्यांकन माप के आधार पर किए जाता था। प्राप्त फसल के आधार पर राज्य का हिस्सा निर्धारित किए गया था। अकबर के अधीन इस तरीके में और सुधार किए गया था। सभी प्रदेशों को लगान मंडलों (सर्किल्स) या 'दस्तूरों' में बांटा गया था। प्रत्येक 'दस्तूर' (सर्कल) के लिए, विभिन्न फ़सलों के उत्पादन के आधार पर प्रति बीघा के अनुसार, उनकी नकद दरें और मूल्य आकलित किए गए थे।

भूमि का वर्गीकरण

क षि योग्य भूमि को नापने के बाद, भूमि की उपजाऊ शक्ति के आधार पर इसे तीन वर्गों में बांटा गया था–अच्छी, मध्यम और खराब भूमि। खेती करते रहने के आधार पर भूमि को आगे और चार वर्गों में बांटा गया था जैसे–पोलाज, परती, चच्चर और बंजर। पोलाज भूमि वह थी जिससे हर वर्ष दो फ़सलें ली जाती थीं, परती भूमि को दो फ़सलों के बाद उसकी उपजाऊ शक्ति की पुनः पूर्ति करने के लिए, कुछ समय के लिए खाली (बग़ैर खेती किए हुए) छोड़ना पड़ता था। चच्चर भूमि वह अनुउपजाऊ भूमि का टुकड़ा होता था, जिस पर हर तीसरे या चौथे वर्ष के अंतराल पर फ़सल उगाई जाती थी, और बंजर भूमि खेती के लिए उपयुक्त नहीं थी और इस पर शायद ही कभी खेती की जाती थी।

विभिन्न स्थानों के लिए हर वर्ष नई दरें समन्वित करने की समस्या का हल आईना–ए–दहसाला या दस वर्ष के लिए उगाने की दरें अपनाने के जरिए किया गया था। इसके अनुसार किसी विशिष्ट फ़सल के लिए पिछले दस वर्ष की दरों के औसत को, किसी खास फसल के लिए लगान दर के रूप में माना जाता था। फिर भी, इन दरों को कुछ अनियमित वर्षों के अन्तराल पर बदल दिया जाता था और हर वर्ष अद्यतन नहीं किए जाता था। प्रारम्भ में इसे आगरा, इलाहाबाद, अवध, दिल्ली, लाहौर और मालवा प्रान्तों में लागू किए गया था। तथापि किसी भी एक वक्त पर किसी विशिष्ट क्षेत्र की सारी भूमि को नापा नहीं गया था। इससे यही संकेत मिलता है कि जिन क्षेत्रों में भूमि का माप लिया गया था वहाँ भी कुछ क्षेत्र ऐसे बच गए थे, जिसकी भूमि का नाप नहीं लिया गया था। ऐसी स्थिति में, यहाँ तक कि ज़ब्ती क्षेत्रों में भी, पूरे देश के लगभग सभी हिस्सों में लगान के मूल्यांकन और एकत्र करने के अन्य तरीके भी अपनाए जाते थे।

राज्य की आय का अधिकांश भाग भू–राजस्व से ही आता था। इसलिए, राज्य लगातार इस कोशिश में लगा रहता था कि ज़्यादा से ज़्यादा भू–क्षेत्र को क षि भूमि के रूप में इस्तेमाल किए जाए, ताकि लगान की आय में व द्धि की जा सके। राज्य के सभी प्रयास इस बात पर भी केन्द्रित होते थे कि किसानों से अधिक से अधिक लगान की वसूली की जा सके।

मुगलकालीन भू–राजस्व प्रशासन की व्यवस्था परगना स्तर पर की जाती थी। भूमि के सर्वेक्षण और लगान एकत्रित करने का काम विभिन्न कर्मचारियों को सौंपा जाता था।

'अमीन' सर्वेक्षण समूह का मुखिया होता था तो 'आमिल' लगान संग्रह का प्रभारी होता था। 'अमीन' के कामों में सहायता करता था 'कानूनगो' जो लगान संबंधी सभी अभिलेख रखने का जिम्मेदार था। लगान एकत्र करने के काम में 'आमिल' की सहायता करता था, 'चौधरी'। गांव के स्तर पर, अभिलेख रखने का काम 'पटवारी' करता था और संग्रहण का काम करता था, 'मुक्कदम' अथवा ग्राम का मुखिया। कुछ अन्य अधिकारी भी थे, जैसे 'पोतदार' या 'खजाँची' और 'कारकुन' या 'क्लर्क'। अभिलेखन का कार्य फ़ारसी और संबद्ध क्षेत्र की भाषा सहित, दोनों भाषाओं में होता था।

पट्टा और कबूलियत

प्रत्येक किसान को राज्य द्वारा एक दस्तावेज दिया जाता था, जिसे पट्टा (स्वामित्व/अधिकार–पत्र) कहते थे जिसमें किसान के कब्ज़े में दी गई भूमि के विभिन्न वर्गों और विभिन्न फ़सलों पर उसके द्वारा देय भू–राजस्व की दर का विवरण लिखा होता था। किसान से एक सहमति–पत्र लिया जाता था जिसे 'कबूलियत' कहते थे, जिसके अनुसार किसान, राज्य को भू–राजस्व की एक विशिष्ट राशि देने का वचन देता था। भूमि के लगान के अतिरिक्त किसानों को राजस्व के मूल्यांकन और इसे एकत्र करने पर आने वाले खर्च को पूरा करने के लिए कुछ अतिरिक्त कर भी देने पड़ते थे।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. 'खेत बटाई' और 'लेंग बटाई' में क्या अन्तर था?

2. मध्यकालीन भारत के तीन शासकों के नाम लिखें, जिनकी भू–राजस्व नीतियों ने भू–राजस्व प्रशासन की व्यापक व्यवस्था के विकास में योगदान किया था।

3. पोलाज, परती और चच्चर भूमि क्या थीं?

4. 'पट्टा' और 'कबूलियत' क्या हैं?

13.3 लगान संग्रहण में जमींदार मध्यस्थों की भूमिका

सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त किसानों और राज्य के बीच में विभिन्न वर्गों के मध्यस्थ भी होते थे। भूमि का लगान वसूल करने में इन मध्यस्थों ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये अपनी सेवाओं के बदले में अपनी भूमि पर लगान में छूट अथवा भू–राजस्व में से अपना हिस्सा मांगते थे।

दिल्ली की सल्तनत की स्थापना से पहले, हमारे अनेक स्रोतों से ये संकेत मिले हैं कि राजा, राजपुत्र, राणका, महासामन्त इत्यादि शब्द उपयोग में थे। ये सभी भूमि के वंशानुगत

अधिकार प्राप्त करने वाले उत्तराधिकारियों से संबंधित थे। वे अपने–अपने क्षेत्रों के किसानों से भूमि का लगान एकत्र करते थे, इसका एक भाग राज्य को भेजते थे और एक भाग जीवनयापन के लिए अपने पास रखते थे। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हमने देखा है, राज्य ब्राहमणों और मंदिरों को कर–मुक्त भूमि प्रदान करता था। इन प्रदाताओं के द्वारा ऐसे क्षेत्रों से भूमि का लगान एकत्र किए जाता था।

सल्तनत के शासनकाल में, जमींदार मध्यस्थ लगान एकत्र करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे थे। खुत्स (छोटे जमींदार), मुक़्कदम (ग्राम के मुखिया) और मध्यस्थों के समूह जैसे राय, राणा, रावत इत्यादि को औसत साधारण किसान से अधिक श्रेष्ठ होने के अधिकार प्राप्त थे। अलाउद्दीन ख़िलजी ने इन समूहों की शक्तियों और भागीदारी को कम करने के प्रयास किए थे। बाद में गयासुद्दीन और फ़िरोज़शाह तुग़लक जैसे दिल्ली के सुलतानों ने इनको कुछ रियायतें दी थीं।

मुग़लकाल के दौरान रायों, राणाओं, रावतों और अन्य मध्यस्थों को जमींदार कहा जाता था। ये वे लोग थे, जिन्हें भूमि पर पैदा होने वाली फ़सल पर वंशानुगत उत्तराधिकार होता था।

जमींदार, किसानों की फ़सल पर सीधे ही अपनी हिस्सेदारी का दावा करते थे। देश के विभिन्न भागों में इनकी भागीदारी 10 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक होती थी। ये दावे राज्य की मांग के साथ गौण रूप में उसके साथ–साथ ही चलते थे। ज़मींदार, राज्य और जागीरदार को लगान एकत्र करने के काम में भी उनकी सहायता करते थे। सल्तनत काल का 'इक़ता', मुग़ल काल तक आते–आते संशोधित रूप में जागीर का रूप ले चुका था। इसके धारकों (जागीरदारों) को लगान से जुड़े कार्यों के जरिये भुगतान किए जाता था। इस संबंध में हम पहले ही पाठ 12 में चर्चा कर चुके हैं। मुक़्क़दम (उत्तर भारत में) और पटेल (दक्कन में), ग्राम प्रमुख के रूप में कार्य करते थे और यह गांव में लगान एकत्र करने और वहां कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार होते थे। इनकी सेवाओं के बदले में इन्हें राजस्व–मुक्त गांव की भूमि प्रदान की जाती थी। पटवारी (उत्तर भारत में) और कुलकर्णी (दक्कन में), जो गांव के लेखाकारों के रूप में काम करते थे, को भी इसी प्रकार भुगतान किए जाता था।

13.4 किसानों पर बोझ

मध्यकालीन भारत में सर्वाधिक जनसंख्या किसानों की थी। परन्तु सभी सजातीय समूह के नहीं थे। एक तरफ का प्रतिनिधित्व बहुत धनी किसान ('खुत' और 'मुक़्क़दम' दिल्ली सलतनत के दौरान और 'खुदकाश्त'–मुग़ल काल के दौरान), थे जिनके पास बहुत अधिक ज़मीनें थीं और वे किराए के मजदूरों की सहायता से ज़मीनों की खेती करवाते थे। दूसरी ओर का प्रतिनिधित्व करने वाले थे, छोटे किसान या गांव के निचले स्तर के लोग (भारत के विभिन्न भागों में जिन्हें बलहार, रेज़ा रियाया, पाल्टी, कुनबी, पाही काश्त, उपारी इत्यादि कहते थे)। किसानों के अधिकांश लोगों के लिए एक सामान्य शब्द 'रैयत' का उपयोग किए जाता था। कुल मिलाकर किसानों को अपनी फ़सल का एक बहुत बड़ा भाग भूमि के लगान के रूप में भुगतान करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में ज़मींदार मध्यस्थ बढ़ती फ़सल के उत्पादन में से अपना हिस्सा समायोजित कर लेते थे। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन भारतीय किसानों को बाढ़, अकाल, महामारी जैसी प्राक तिक आपदाओं का भी सामना करना पड़ता था। एक आम किसान को करों के दबाव,

लिए गए ऋणों के लेन–देन, बार–बार पड़ने वाले अकाल और महामारी के कारण, बची–खुची बहुत कम आमदनी में जीवनयापन करना पड़ता था।

किसानों की कठिनाइयाँ और गुस्सा कई बार विरोध और विद्रोह बनकर फूटता था। सल्तनत काल के दौरान, मोहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा दोआब क्षेत्र में लगान बढ़ाए जाने के प्रयासों की वजह से किसान वर्ग में बहुत गंभीर विद्रोह पैदा हो गया था। सम्राट औरंगज़ेब के शासनकाल के दौरान जाटों, सिखों, मराठों और सतनामियों में बहुत बड़े स्तर पर विद्रोह पैदा हो गया था। इन बगावत की घटनाओं के पीछे क षकों की असंतुष्टि भी एक बहुत बड़ा कारण था।

पाठगत प्रश्न 13.3

1. राजपुत्र, राणका और महासामन्त कौन थे?

____

2. मुक़्क़दम और पटेल कौन थे?

____

3. मुग़ल काल के दौरान हुए कुछ महत्त्वपूर्ण किसान विद्रोहों की सूची बनाएं।

____

13.5 दस्तकारी से संबद्ध (ग़ैर-क षि) उत्पादन

यद्यपि अधिकांश लोगों का व्यवसाय क षि था, परन्तु देश के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में काफ़ी बड़े स्तर पर अनेक प्रकार के शिल्प कार्य भी अस्तित्व में थे। इन शिल्प कार्यों में शामिल थे, कपड़ा बुनना, मिट्टी के बर्तन बनाना, रंगाई, खांडसारी (चीनी बनाना), धातु कार्य, काग़ज़ बनाना, लकड़ी का काम, शस्त्र और कवच का निर्माण, पोत–निर्माण, रसायनों से जुड़े कार्य इत्यादि।

प्रमुख शिल्प कार्य

बुने हुए कपड़ों का उत्पादन, मध्यकालीन भारत में बहुत व्यापक रूप से किए जाने वाला कारीगरी का काम था। भारतीय बुनकर चार प्रकार के कपड़ों का निर्माण करते थे – सूती, रेशमी, ऊनी और मिश्रित मोटा सूती कपड़ा। बंगाल, लाहौर, आगरा, अवध, पटना, फतेहपुर सीकरी और गुजरात इत्यादि सूती कपड़ा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे। कपड़ों के निर्माण के अतिरिक्त बंगाल और गुजरात बुने गए कपड़ों की वस्तुओं के बहुत प्रसिद्ध निर्यातक थे।

इस अवधि के दौरान रंगाई और ब्लीचिंग (विरंजन) की कला, प थक रूप में एक विशिष्ट कारीगरी के रूप में उभर कर आई। भड़ूच, अहमदाबाद, सूरत, पटना, सोनारगांव, ढाका, मसोलीपट्टम इत्यादि प्रमुख रंगाई और ब्लीचिंग (विरंजन) के केन्द्र थे।

चीनी का उत्पादन पूरे देश में होता था। खांडसारी के विविध रूपों में जैसे गुड़, बूरा, शक्कर इत्यादि का उत्पादन बंगाल, उड़ीसा, अहमदाबाद, लाहौर, मुल्तान और अन्य अनेक स्थानों पर होता था।

धातु निष्कर्षण एक अन्य मुख्य उद्योग था। नमक, कलमी शोरा, फ़िटकरी, अबरक इत्यादि का बहुत बड़े स्तर पर उत्पादन होता था। राजस्थान की साम्भर झील, पंजाब की रॉक साल्ट की खानें और समुद्र का पानी नमक उत्पादन के कुछ प्रमुख स्रोत थे। समुद्री नमक का उत्पादन मुख्यतया बंगाल, सिंध, मालाबार, मैसूर और कच्छ के रण में होता था। कमली शोर, जिसका उपयोग बुनियादी रूप से बारूदी चूर्ण (पाउडर) बनाने में एक मुख्य घटक के रूप में होता था, बहुत ही महत्त्वपूर्ण खनिज उत्पाद था। प्रारंभ में यह अहमदाबाद, बड़ौदा और पटना इत्यादि में निकाला जाता था। तथापि सत्रहवीं सदी के द्वितीय अर्ध काल के दौरान, पटना इस खनिज के संसाधन का एक बहुत महत्तवपूर्ण केन्द्र बन गया था।

धातुओं में, भारत में सोना और चांदी की खानों की कमी थी। इसलिए, इन धातुओं को प्रायः आयात किए जाता था। हीरों का खनन मुख्यतया गोलकुंडा में देखने में आया था। हीरों के उत्पादन के कुछ अन्य केन्द्र थे बीरगढ़ (बरार), पन्ना (मध्य प्रदेश), और खोखरा (छोटा नागपुर) इत्यादि। खेतड़ी (राजस्थान) तांबा उत्पादन का मुख्य केन्द्र था। लोहा बहुतायत में पाई जाने वाली आम धातु थी। मध्यकाल में बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, बिहार, गुजरात, दिल्ली, कश्मीर, छोटा नागपुर और उड़ीसा के आसपास के क्षेत्र लोहा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे।

काग़ज़ बनाने की कारीगरी का प्रारंभ, भारत में सल्तनत काल के दौरान हुआ। पहली बार इसका उत्पादन, प्रथम शताब्दी ई. के आसपास चीन में हुआ था। इसके पश्चात इस शिल्प में बहुत तेज़ी से विकास हुआ। काग़ज़ निर्माता, मुग़ल काल में लगभग प्रत्येक क्षेत्र में (उपलब्ध) थे। मध्यकाल के दौरान अनेक नई तकनीकों और विविध क्षेत्रों में उनके उपयोग का उद्भव देखने को मिला। कपड़ा बुनाई (टेक्सटाइल) के क्षेत्र में, तेरहवीं–चौदहवीं सदियों के दौरान, चरखे (स्पिनिंग व्हील) की शुरूआत बहुत ही महत्त्वपूर्ण खोज थी। तकली से धागा निर्माण करने की तुलना में चरखे से धागे के उत्पादन में छह गुना व द्वि हुई। इसी प्रकार पन्द्रहवीं शताब्दी में भारत में खड्डी (पिट–लूम) की शुरूआत हुई, जिससे कपड़े की बुनाई के काम को बहुत गति मिली। ड्रॉलूम बुनाई की एक और महत्त्वपूर्ण युक्ति (डिवाइस) थी, जिसका उपयोग विविध रंगों के धागों की बुनाई के पैटर्न बनाने के लिए साथ–साथ किए जाता था। इसी प्रकार कुछ विद्वान, ठप्पों (सांचों) से छपाई (ब्लॉक प्रिंटिंग) के काम का श्रेय भी भारत के मध्यकालीन काल को ही देते हैं।

धातु विज्ञान और धातु–कार्य के क्षेत्र में इनके निर्माण की प्रक्रिया में अनेक प्रकार की नई प्रौद्योगिकी का प्रारंभ हुआ। जिनमें कुछ प्रमुख थीं – सीधी खड़ी खुदाई के खड्डे खोदना (वर्टिकल बोर पिट्स), अंडाकार नाल (ओवल शॉफ्ट) से गहरी खानों की खुदाई, पुली इत्यादि का उपयोग। उच्च गुणवत्ता के स्टील और तांबा और जस्ता (जिंक) की मिश्रधातु बिदरी का उत्पादन इस काल के नए धातु–कर्म थे।

शस्त्रों और कवच निर्माण के क्षेत्र में, बारूद, तोप, आग्नेय–अस्त्र इत्यादि मध्यकालीन काल की नवीन महत्त्वपूर्ण खोजें थीं। भारत में आधुनिक तोपखाना एक ओर तो बाबर लेकर आया (जिसने इसे फ़ारस से प्राप्त किए था) और दूसरी ओर इसे पुर्तगालियों द्वारा भी लाया गया। इसके अतिरिक्त, फ़तुल्लाह शिराज़ी ने, जो अकबर के शासन काल में अत्यन्त मेधावी और दक्ष इंजीनियर था, इस क्षेत्र में अमूल्य नई खोजें कीं।

कागज़ बनाने की कला, जैसा कि उल्लेख किए गया हैं, भारत में इसी अवधि के दौरान आई। इसके साथ ही किताबों पर जिल्द बांधने की कला का विकास भी इसके साथ–साथ हुआ।

यद्यपि काँच बनाने की कला से भारतीय प्राचीन काल के दौरान ही परिचित थे परन्तु इसका उपयोग मोती और चूड़ियाँ बनाने तक ही सीमित था। मध्यकाल में काँच की विभिन्न वस्तुएँ, जैसे–औषधीय शीशियाँ (फार्मास्यूटिकल फॉयल्स), बर्तनों आदि का निर्माण भी होने लगा था। तुर्कों के भारत में आने के साथ ही रांगा की परत (कलई करने) चढ़ाने (टिन–कोटिंग) का काम भी यहाँ शुरू हो गया था। इस तकनीक में तेजाब के ज़हरीले प्रभाव से बचने के लिए तांबे और पीतल के बर्तनों के अन्दर टिन की एक परत चढ़ाई जाती थी (कलई की जाती थी)।

उत्पादन की व्यवस्था

गाँव और क़स्बे दोनों स्थानों पर शिल्पों के उत्पादन की व्यवस्था होती थी। वहाँ शाही कारखाने भी होते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में कारीगर दैनिक उपयोग की वस्तुएँ बनाते थे। ये कारीगर गाँव के सामाजिक तंत्र का हिस्सा होते थे, जिसे 'जजमानी' प्रथा कहते थे। दक्कन और महाराष्ट्र में यह प्रथा ज़्यादा व्यवस्थित थी। गाँव के दस्तकारों और सेवकों को इस क्षेत्र में 'बलूतेदार' कहा जाता था।

शहरों में रहने वाले कारीगर ऐसी उपयोगी वस्तुओं के केन्द्र में होते थे, जिनका उत्पादन बाजारों के लिए किए जाता था। लगभग प्रत्येक शिल्प के लिए एक विशिष्ट कारीगर होता था, जो बाज़ार के लिए चीज़ें निर्मित करता था। शिल्पकारी उत्पादन की व्यवस्था के इस स्तर पर, कारीगर व्यक्तिगत रूप में आवश्यक कच्चे माल और औज़ारों की व्यवस्था करता था, माल तैयार करता था और इसे बाज़ार में बेचता था। परन्तु इस प्रकार कारीगरों की वस्तुएँ निर्मित करने में एक बहुत बड़ी कमी थी। क्योंकि उत्पादन की व्यवस्था खुद व्यक्ति अपने आप करता था इसलिए उत्पादन प्रक्रिया में बड़ी पूंजी लगाने में कारीगर असमर्थ रहता था। इस समस्या के समाधान के लिए धीरे–धीरे उत्पादन की एक संशोधित प्रथा का विकास हुआ जिसे 'दादनी प्रथा' कहते थे। इस प्रथा में जो व्यापारी उस कारीगर द्वारा बनाई गई वस्तुओं का व्यापार करता था वही उसे कच्चा माल और अग्रिम धनराशि प्रदान करता था। निर्धारित अवधि बीतने के बाद वह व्यापारी तैयार वस्तुओं को इकट्ठा करके बाज़ार में बेचता था।

शाही कार्यशाला (कारखाना) शिल्पकारी उत्पादन का एक अन्य हिस्सा होता था। ये कारखाने शाही स्थापना के अंग थे। ये शाही घराने और दरबार के उपयोग के लिए वस्तुओं का निर्माण करते थे, प्रायः यहाँ पर बहुत महँगी और विलासिता की वस्तुओं का निर्माण होता था। कारखानों में बहुत ही कुशल कारीगरों को नियुक्त किए जाता था और जो एक ही छत के नीचे काम करते थे और राज्य के अधिकारियों द्वारा इन पर निगरानी रखी जाती थीं। स्पष्ट है कि दो बिल्कुल भिन्न प्रकार के कारखाने होते थे। पहले–पारंपरिक किस्म के कारखाने, जिनमें बहुत कम मात्रा में विलासितापूर्ण वस्तु का निर्माण होता था परन्तु वे बहुत उच्च गुणवत्ता की शिल्पकारी वस्तुएँ होती थीं और दूसरी टकसालें या शस्त्र निर्माण के एकक, जहाँ पर मानकों की द ष्टि से तकनीकी उच्चता की वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था।

पाठगत प्रश्न 13.4

1. भारत के पाँच मध्यकालीन मुख्य शिल्पों के नाम लिखें?

2. कलमी शोरा उत्पादन के तीन मुख्य केन्द्रों के नाम लिखें?

3. हीरा उत्पादन के चार मुख्य केन्द्रों के नाम लिखें?

4. कपड़ों की बुनाई में प्रयुक्त होने वाली तीन महत्त्वपूर्ण तकनीकी युक्तियों के नाम लिखें?

13.6 व्यापार और वाणिज्य

मध्यकालीन काल में भारत में बहुत विकसित बाह्य और आंतरिक व्यापार था। आन्तरिक व्यापार का विकास स्थानीय, प्रादेशिक और अन्तर–प्रादेशिक स्तर पर हुआ। सड़क मार्गों से चीन, अरब, मिस्र, मध्य एशिया और अफ़गानिस्तान जैसे क्षेत्रों के साथ व्यापारिक संबंध रखे जाते थे। समुद्र के उस पार व्यापार फ़ारस की खाड़ी, दक्षिण चीन सागर, भूमध्य सागर और लाल सागर से होता था। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के आने से भारतीय उप–महाद्वीप में पुर्तगालियों, ब्रिटिश, डच और फ्रांसिसियों के साथ व्यापारिक गतिविधियों में तेज़ी आई। एशियन नौवहन (मैरिटाइम) व्यापार में भी इस दौरान काफी व द्धि हुई। इस कालावधि में अनेक नई व्यापारिक गतिविधियों, जैसे – ऋण देना, दलाली, बीमा इत्यादि में भी काफी व द्धि देखने में आई थी। बहुत बड़ी संख्या में व्यापारियों, सर्राफा दलालों इत्यादि को भी व्यापारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाते देखा गया।

1. आंतरिक व्यापार

मुग़ल काल तक आन्तरिक व्यापार बहुत विकसित हो चुका था। हरेक स्थानीय आबादी में नज़दीक के कस्बों में नियमित बाज़ार थे जहाँ पर आसपास के इलाकों के लोग, सामान बेच और ख़रीद सकते थे। स्थानीय स्तर पर व्यापार के अतिरिक्त आवधिक बाज़ारों के ज़रिए भी व्यापार होता था, जिन्हें 'हाट' या 'पैंठ' कहते थे और ये सप्ताह के निश्चित दिन पर किसी स्थान पर लगते थे। इन स्थानीय बाज़ारों में, खाद्य–अनाज, नमक, लकड़ी और लोहे के उपकरण, खादी इत्यादि दैनिक उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध होती थीं।

यह स्थानीय बाज़ार, उस विशिष्ट प्रदेश के बड़े व्यापारिक केन्द्रों से जुड़े होते थे। ये केन्द्र उस विशिष्ट क्षेत्र के उत्पादों के बाज़ार के रूप में कार्य नहीं करते थे बल्कि अन्य क्षेत्रों से भी सेवा सामान उपलब्ध कराते थे। दिल्ली, आगरा, लाहौर, मुल्तान, बीजापुर, हैदराबाद, कालीकट, कोचीन, पटना इत्यादि मुग़लकाल के दौरान कुछ ऐसे व्यापारिक क्षेत्र थे।

विलासितापूर्ण उपभोक्ता वस्तुओं के संबंध में भी बहुत सक्रिय व्यापार होता था। ज़ियाऊद्दीन बरानी ने अपनी किताब तारीख़–ए–फिरोज़शाही में उल्लेख किए है कि सल्तनत काल के दौरान दिल्ली, कोल (अलीगढ़) से अर्क से निकाली गई शराब, देवगिरी से मलमल, लखनौटी से धारीदार कपड़ा और अवध से साधारण कपड़ा प्राप्त करते थे। बंगाल के, अपने मुख्य व्यापारिक केन्द्रों जैसे – हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद, सतगाँव और पटना इत्यादि के माध्यम से, भारत के सभी भागों के साथ बहुत विकसित अन्तर–प्रादेशिक व्यापारिक संबंध थे। इसी प्रकार, पश्चिम भारत में सूरत और अहमदाबाद और उत्तर–भारत में आगरा ऐसे प्रमुख केन्द्र थे, जिनके बहुत विकसित अन्तर–प्रदेशीय व्यापारिक संबंध थे।

2. विदेश व्यापार

भारत में हमेशा से अन्य देशों के साथ व्यापारिक संबंध रखने की परंपरा रही है। प्रारंभिक मध्य काल के दौरान (अर्थात दसवीं शताब्दी के बाद से), भारत में, समकालीन चीन, अरब और मिस्र के साथ व्यापार होता था। भारत की, फ़ारस की खाड़ी और दक्षिण चीन सागर के बीच भी, समुद्र मार्ग से व्यापार की काफी अच्छी हिस्सेदारी थी। भारत, चीन और दक्षिण एशिया से रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तन, कपूर, लौंग, मोम और चंदन की लकड़ी और बहरीन, मस्कट, अदन और फ़ारस इत्यादि स्थानों से घोड़े आयात करता था। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ थीं, सुगंधियाँ (इतर) और मसाले, सूती कपड़ा, हाथी दांत की वस्तुएँ और बहुमूल्य रत्नों और कीमती पत्थर की मणियाँ इत्यादि। सल्तनत काल के दौरान भारत के मध्य एशिया, अफ़गानिस्तान, फ़ारस की खाड़ी और लाल सागर के साथ व्यापारिक संबंध थे। भारत मुख्य रूप से खाद्यान्न, बुना हुआ कपड़ा, नील, बहुमूल्य रत्न इत्यादि निर्यात करता था और सोना और चांदी जैसी बहुमूल्य धातुए, घोड़े, जरी (ब्रोकेड) और रेशम का सामान इत्यादि आयात करता था।

मुग़ल काल के दौरान, यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के भारत में आने और उनके यूरो–एशियन और अन्तर–एशिया व्यापार में प्रत्यक्ष भागीदारी के कारण, विदेश व्यापार में और अधिक तेज़ी आई। मध्य एशिया, फ़ारस (पर्शिया) और यूरोप से भारत के व्यापारिक संबंध थे। इसके निर्यात में प्रमुख चीज़ें थीं, कपड़े, कलमी शोरा, चीनी (खांड), अफ़ीम और मसाले। अपनी निर्यात की गई वस्तुओं की तुलना में भारत में आयात की जाने वाली उपभोक्ता वस्तुएँ बहुत चुनिंदा थीं, जैसे चांदी, रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तन, अच्छी गुणवता की शराब, कालीन (गलीचे), इत्र, कांच, घड़ियाँ, चांदी के बर्तन और घोड़े इत्यादि।

3. व्यापारिक समुदाय

मध्यकालीन भारत की संपूर्ण कालावधि के दौरान भारत में, व्यापारिक समुदाय ने समकालीन अर्थव्यवस्था और समाज में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सल्तनत काल के दौरान, 'कारवांनी' या 'नायक' व्यापारी होते थे, जो ग्रामीण क्षेत्रों से अनाज ढोने के विशेषज्ञ थे। फ़ारसी में 'कारवांनी' शब्द का अर्थ है वे लोग जो बहुत बड़ी संख्या में समूह में चलते हैं। बाद की सदियों में इन लोगों को 'बंजारे' कहा जाता था। हमें भी ऐसे मुल्तानी व्यापारियों के उल्लेख मिले हैं, जो दूर–दराज के स्थानों में व्यापार करने के काम में दक्ष थे। ये अधिकतर हिन्दू व्यापारी थे।

मुग़ल काल में भी हमें अनेक व्यापारिक वर्गों के संबंध में सूचनाएँ मिली हैं। समकालीन साहित्य में बंजारों के संबंध में अनेक उल्लेख मिले हैं जिनमें उन्हें ऐसे व्यापारिक वर्ग के रूप में दर्शाया गया है जो गांवों और शहरों के बीच व्यापार करते थे। वे अपने परिवारों और घरेलू–सामान साथ लेकर समूहों में चलते थे। ये मुल्तानी व्यापारी इस काल के दौरान, दिल्ली, 'पंजाब' और 'सिंध' के कुछ भागों में बहुत फलते–फूलते रहे। उत्तर भारत और दक्कन में 'बनिया' एक और प्रमुख व्यापारिक समुदाय था। इन्हीं के समकक्ष थे पंजाब में 'खतरी' और गोलकुंडा में 'कोमाती'। व्यापारिक गतिविधियों में लिप्त होने के साथ–साथ ये लोग ऋण देने का काम भी करते थे। मुग़ल काल के दौरान 'बोहरा' एक अन्य कौम थी जो प्रमुखतः व्यापार से जुड़ी थी। गुजरात, उज्जैन और बुरहानपुर में इनकी काफ़ी ज़्यादा संख्या देखने को मिली। कुछ अन्य प्रमुख व्यापारिक समूह थे 'चैती' (दक्षिण भारत), 'कलिंग' (कोरोमंडल के समुद्र तट से लेकर उड़ीसा तक), 'कोमाती' (तेलुगू बोलने वाला व्यापारिक समूह) इत्यादि।

(क) **सर्राफ़ः** यह एक अन्य समुदाय था जो पैसे के लेन–देन के काम में लगा था। इस समुदाय के उल्लेख, सल्तनत काल से मिलने शुरू हो गए थे। तथापि, मुग़ल काल तक आते–आते इन्होंने तीन भिन्न–भिन्न कार्य विकसित किए।

1. धन (सिक्के) बदलने वाले – इस भूमिका में, सर्राफ़ को सिक्के की धातु संबंधी शुद्धता और उसके वज़न की जाँच के काम में विशेषज्ञ समझा जाता था। वे विशिष्ट सिक्कों की चालू विनिमय दर भी निर्धारित करते थे।
2. साहूकार/(महाजन), इस रूप में वे धनराशि अपने पास जमा करते थे और ब्याज पर ऋण भी देते थे।
3. व्यापारियों के रूप में ये लोग सोना, चांदी और गहनों का व्यापार करते थे। इसके अतिरिक्त वे 'हुंडियाँ' या 'विनिमय–पत्र' भी जारी करते थे।

(ख) **दलालः** 'दलालों के रूप में पुकारे जाने वाला यह एक प्रमुख व्यापारिक वर्ग था। इसका उद्भव सल्तनत काल के दौरान हुआ। तथापि मुग़ल काल के दौरान 'दलाली' एक बहुत ही व्यापक व्यापारिक गतिविधि बन गई थी। ये लोग दो व्यापारिक गतिविधियों या लेन–देन में मध्यस्थ की तरह काम करते थे। विदेशी व्यापारी, जो उत्पादन केन्द्रों से अनभिज्ञ थे बाजार के तौर – तरीकों और भाषा से अपरिचित होते थे, वे अपने व्यापार के लिए मुख्य रूप से इन दलालों पर ही निर्भर होते थे। ये दलाल अलग–अलग हैसियतों में काम करते थे। कुछ को व्यापारियों या कंपनियों द्वारा नियुक्त किए जाता था। कुछ स्वतंत्र दलाल के रूप में काम करते थे, जो एक ही समय में कई ग्राहकों के लिए काम करते थे। इनमें से कुछ व्यापारिक केन्द्रों पर राज्य द्वारा नियुक्त दलाल के रूप में काम करते थे तथा जो वस्तुओं के क्रय–विक्रय का लेखा–जोखा रखते थे। दलालों का कोई निर्धारित शुल्क नहीं होता था। यह शुल्क उपभोक्ता वस्तु और दलाल द्वारा उस सौदे को पूरा करवाने में निभाए गए प्रयास पर निर्भर होता था।

4. व्यापारिक गतिविधियाँ

व्यापार और व्यापारिक वर्ग के विकसित होने के साथ–साथ, मध्य युग की अवधि के दौरान कुछ नई व्यापारिक गतिविधियाँ भी विकसित हो गई थीं।

(क) हुंडी: 'हुंडी' या 'विनिमय–पत्र' एक मध्यकालीन व्यापारिक गतिविधि थी। 'हुंडी' काग़ज़ पर बना एक दस्तावेज़ होता था जिसके अनुसार एक निश्चित समय की अवधि के बाद किसी विशिष्ट स्थान पर उसमें लिखी धनराशि के भुगतान का वचन देना होता था। इस प्रथा की शुरूआत की वजह थी, भारी मात्रा में नकद धनराशि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की समस्या। सर्राफ़, जो 'हुंडी' के लेन–देन में मुख्य भूमिका निभाते थे, की विभिन्न कस्बों और शहरों में अनेक स्थापनाएँ होती थीं। ये लोग स्थानांतरित की जाने वाली नकद राशि स्वीकार करने के बाद, व्यापारियों को हुंडियाँ जारी करते थे। हुंडियों में धनराशि, और उसके नकदीकरण के स्थान के बारे में उल्लेख किए जाता था। इन हुंडियों को इनके निर्धारित गंतव्य स्थान तक ले जाने वाले व्यक्ति इन हुंडियों को जारी करने वाले सर्राफ़ों के एजेंटों के समक्ष प्रस्तुत करते थे और इनमें लिखी राशि के मुताबिक नकद राशि उससे प्राप्त कर लेते थे। व्यापारियों के अतिरिक्त राज्य के अधिकारी और अन्य अभिजात्य लोग भी धनराशि स्थानान्तरण के लिए इनका उपयोग करते थे।'हुंडी' प्रथा, धन स्थानांतरित करने की बहुत सुरक्षित और सुविधाजनक पद्धति के रूप में स्थापित हो गई थी। सर्राफ़ जो भी हुंडी जारी करते थे, उसके लिए दलाली वसूल करते थे।

(ख) बीमा: यह प्रथा बहुत व्यापक रूप में व्याप्त हो गई थी, विशेष रूप से मुग़ल काल में। कुछ बीमा फर्में विकसित हो गई थीं (अधिकांश सर्राफ़ों के स्वामित्व में), जो व्यापारिक माल के सुरक्षित वहन और वितरण की खुद जिम्मेदारी लेती थीं। यदि किसी मामले में पारगमन में माल को कोई नुकसान पहुंचता था, तो इन फर्मों को उस माल की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। ऐसे माल के लिए बीमे के रूप में कुछ दलाली की राशि भी ली जाती थी। विभिन्न क्षेत्रों और माल के अनुसार दलाली की राशि की दर अलग–अलग होती थी। समुद्र पार माल भेजे जाने की दर, स्वदेश में भेजे जाने वाले माल से ऊँची होती थी।

13.7 मुद्रा प्रणाली

नकद लेन–देन के लिए मुख्य तौर पर चांदी और तांबे के सिक्के चलन में थे। सल्तनत काल में चांदी के अलग–अलग अनुपातों वाले चांदी के सिक्के मुख्य मुद्रा थे, जिसे 'टंका' कहते थे। 'जितल' और 'डाँग' तांबे के सिक्के थे। धातुओं के मूल्य में परिवर्तन के साथ ही सिक्कों के मूल्य में भी अन्तर आ जाता था। शेरशाह के शासनकाल में पहली बार सोने, चांदी और तांबे के सिक्कों में धातुओं की शुद्धता स्थापित की गई थी। चांदी का 'रूपया' लेन–देन कारोबार के लिए उपयोग किए जाने वाला आधारभूत सिक्का था। इसका वज़न 178 दानों के बराबर था। अकबर के शासन काल में भी यही जारी रहा परन्तु उसके उत्तराधिकारियों के आने पर उसमें उतार–चढ़ाव होते रहे। मुग़लों के तांबे के 'दाम' का वजन 323 दानों के बराबर था। चांदी के 'रूपए' और तांबे के 'दाम' के मूल्य में चांदी की उपलब्धता और अभाव के अनुसार उतार–चढ़ाव होता रहता था। अकबर के काल में 1 चांदी के रूपये का मूल्य 40 तांबे के दामों के बराबर था। सोना या अशर्फ़ी का वज़न 169 दानों के बराबर होता था।

सिक्कों की ढलाई, साम्राज्य के सभी भागों में फैली शाही टकसालों में होती थी। अकबर के शासन काल में सोने के सिक्के 4 टकसालों से, चांदी के सिक्के 14 और तांबे के सिक्के 42 टकसालों से जारी किए जाते थे। औरंगज़ेब के काल तक रूपयों की टकसालों की संख्या बढ़कर 40 हो गई थी।

चित्र 13.1 सिक्के

पाठगत प्रश्न 13.5

1. ऐसे पाँच देशों के नाम लिखें, जिनके साथ मध्यकाल के दौरान भारत में सड़क मार्ग से व्यापारिक संबंध थे।

2. 'हाट' क्या थी?

3. मध्यकालीन बंगाल के कुछ प्रमुख व्यापार केन्द्रों के नाम लिखें?

4. निम्नलिखित शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या करें :
   कारवांनी, खत्री, कोमाती, बोहरा, चैत्ती

आपने क्या सीखा

आइए इस पाठ के कुछ मुख्य मुद्दों को संक्षेप में दोहराते हैं। अधिकांश लोगों का व्यवसाय क षि से जुड़ा था। नये – नये क्षेत्रों में क षि के विस्तार के द्वारा क षि उत्पादन में व द्धि करना, राज्य की नीतियों का भाग था। किसान लोग अनेक प्रकार की खाद्य फ़सलें, नकद फ़सलें, फल, सब्जियाँ और मसाले उगाते थे। वे उच्च क षि तकनीकों को उपयोग में लाते थे, जैसे फसलों को बदल–बदल कर बोना (फसल–चक्र), दो फ़सलें बोना, एक वर्ष में तीन फसलों की बुआई, फलों की कलम लगाना इत्यादि। इस प्रयोजन के लिए जल को ऊँचाई तक उठाने के लिए जल उठाने की क त्रिम यांत्रिकी (आर्टिफिशियल वाटर लिफ्टिंग डिवाइस) का उपयोग करते थे। राज्य की आय का सर्वाधिक भाग भू–राजस्व से आता था। अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर जैसे शासकों द्वारा इस क्षेत्र में किए गए कुछ अग्रणी प्रयासों के परिणामस्वरूप भू–राजस्व प्रशासन को बहुत व्यवस्थित और व्यापक रूप से विकसित किए गया था।

राज्य और किसानों के मध्य लगान से संबद्ध मध्यस्थों का एक बहुत ही शक्तिशाली समूह मौजूद था। इनको निर्धारित क्षेत्रों से भूमि का लगान हासिल करने के कुछ वंशानुगत या राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकार, (धर्म के आधार पर दान में प्राप्त अथवा उनकी सेवाओं के बदले में प्राप्त अधिकार) प्राप्त थे। ये मध्यस्थ भू–लगान एकत्र करने भी प्रक्रिया में राज्य की सहायता करते थे। मध्यकालीन भारतीय किसानों को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। भूमि कर की शोषक प्रक ति, मध्यस्थों द्वारा लगान में हिस्सा मांगना और बार–बार आने वाली प्राक तिक आपदाओं ने साधारण किसान के जीवन को बहुत ही निराशाजनक और कष्टकारी बना दिया था। इसीलिए, किसानों के विद्रोह भी इस अवधि के दौरान होते रहते थे। कपड़ों की बुनाई (टेक्सटाइल), खनन और धातु–कर्म, पोत–निर्माण, निर्माण कार्य, शस्त्रों और कवच का निर्माण इस कालावधि के दौरान कार्यशालाओं (शाही कारखानों) में, शासक अभिजात्यों के उपयोग के लिए उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण होता था।

वाणिज्य के क्षेत्र में भारत के संबंध समकालीन मध्य एशिया, चीन, दक्षिण–पूर्व एशिया और यूरोप इत्यादि से थे। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ, जैसे पुर्तगाली, अंग्रेज़, डच और फ्रांसीसी थी। अन्तर–एशिया और यूरो–एशियन व्यापार में उनकी भागीदारी ने भारतीय वाणिज्य को अत्यन्त प्रभावित किए।

पाठान्त प्रश्न

1. मध्यकालीन भारत में खेती–बाड़ी की सीमा क्या थी?
2. 'पर्शियन व्हील' (रहट) से आप क्या समझते हैं? यह कैसे काम करता था?
3. फिरोज़शाह तुग़लक द्वारा सिंचाई के लिए बनवाई गई कुछ नहरों के नाम लिखें?
4. भू–राजस्व मूल्यांकन के विविध चरणों की व्याख्या करें।

5. 'आइना–ए–दहसाला' क्या था? यह कैसे कार्य करता था?
6. कुछ प्रमुख भूमि–राजस्व कार्मिकों के नामों और परगना और ग्रामीण स्तर पर उनके विशिष्ट कार्यों का उल्लेख करें।
7. 'कारखाना' क्या था? यह कैसे कार्य करता था?
8. मध्यकालीन भारत के पांच प्रमुख व्यापारिक समुदायों के नाम लिखें।
9. 'सर्राफ' कौन था? उसकी क्या भूमिका थी?
10. 'हुंडी' शब्द से आप क्या समझते हैं? व्यापार और वाणिज्य को इसने कैसे सरल बनाया?
11. लगान एकत्र करने में जमींदार मध्यस्थों की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
12. मध्यकालीन भारत के दौरान सिंचाई के साधनों पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
13. मध्यकाल के दौरान कारीगरों के उत्पादन की व्यवस्था पद्धति पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
14. मध्यकालीन भारत के स्थानीय प्रादेशिक और अन्तर प्रदेशीय व्यापार के संबंध में संक्षिप्त विवेचन करें।
15. मध्यकालीन भारत की मुद्रा प्रणाली पर टिप्पणी लिखें।

पाठगत प्रश्नों के उतर

13.1

1. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के सम्पूर्ण काल के दौरान किसानों द्वारा खेती की जाने वाली वास्तविक ज़मीन से बहुत अधिक फालतू ज़मीन मौजूद थी। नए–नए क्षेत्रों को खेती के अधीन लाकर क षि उत्पादों में व द्धि के प्रयास किए जाते थे।
2. खाद्य फ़सलें – चावल, गेहूँ, जौ और ज्वार, चना, मूंग;

   नकदी फ़सलें – गन्ना, अफ़ीम, नील, रेशम
3. तम्बाकू, अनानास, चैरी, पपीता
4. पर्शियन व्हील (रहट) इस युग की सबसे उच्च वाटर लिफ्टिंग डिवाइस (जल उठाने की युक्ति) थी। एक गियर की यांत्रिकी सहित, एक पहिये के रिम पर, हार की तरह चारों ओर बर्तनों की एक लड़ी जोड़ दी जाती है। पशु–शक्ति के बल से इस पहिये को घुमाया जाता था, जिससे एक के पीछे एक बँधे डिब्बों से पानी ऊपर चढ़ता रहता था।

13.2

1. फ़सल बांटने के तरीके के रूप में, 'खेत बटाई' – किसानों और राज्य के बीच खेत में खड़ी फ़सल के बंटवारे को कहते हैं; 'लेंग बटाई' यानी फ़सल की कटाई के बाद फ़सल की छंटाई किए बग़ैर उसके ढेर बनाना।

2. अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर।
3. ये भूमि–राजस्व से जुड़े दो दस्तावेज़ थे। 'पट्टा' किसी व्यक्तिगत किसान को दिया जाने वाला वह दस्तावेज़ था, जिसमें उसकी भूमि की श्रेणी और विभिन्न फ़सलों पर लगने वाले भूमि के लगान का पूरा विवरण उल्लिखित होता था। 'क़बूलियत' एक सहमति पत्र था, जिसके द्वारा किसान अपनी भूमि पर देय भूमि लगान, राज्य को भुगतान करने का वचन देता था।

13.3

1. यह शब्द, दिल्ली सलतनत की स्थापना से पहले, वंशानुगत भूमि पर अधिकार प्राप्त करने वाले वर्ग पर लागू होता था। ये लोग भू–राजस्व एकत्र करने की प्रक्रिया में, राजस्व प्राप्त करने में राज्य की सहायता करते थे।
2. 'मुक़्क़दम' और 'पटेल' क्रमशः उत्तर और दक्षिण भारत में गांव के मुखिया होते थे, जो अपने संबंधित गांव में भूमि का लगान एकत्र करने और गांव में क़ानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार थे।
3. यह विद्रोह जाटों, सिक्खों, मराठों और सतनामियों में था।

13.4

1. मध्यकालीन भारत के पाँच प्रमुख शिल्प थे – कपड़ा बुनाई (टेक्सटाइल), रंगाई और ब्लीचिंग, चीनी का निर्माण, खनिज निकालना और धातुविज्ञान (धातु कर्म)
2. अहमदाबाद, बड़ौदा और पटना
3. गोलकुंडा, बैरागढ़, पन्ना और खोखरा
4. स्पिनिंग व्हील (चरखा), पिट लूम और ड्रॉलूम

13.5

1. भारत ने सड़क मार्ग से, चीन, अरब, मिस्र, फ़ारस और अफ़गानिस्तान से व्यापार किए।
2. **'हाट'** आवधिक स्थानीय बाज़ार था, जो कि सप्ताह के निर्धारित दिनों को लगता था। इन बाज़ारों से स्थानीय लोग अपनी दैनिक इस्तेमाल की चीज़ें खरीदते थे।
3. बंगाल के कुछ प्रमुख व्यापार केन्द्र थे, हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद, सतगांव और पटना।
4. **'कारवांनीस'** एक फ़ारसी (पर्शियन) शब्द है, जिसे उन व्यापारियों के लिए उपयोग किए जाता था, जो समूहों में चलते थे और एक से दूसरे स्थान पर अनाज वहन करते थे।

खत्री - खत्री, पंजाब में अनाज के व्यापारियों (आढ़तियों) का एक प्रमुख व्यापारिक समुदाय था।

कोमाती - कोमाती, गोलकुंडा का एक प्रमुख व्यापारी समूह था (तेलुगू बोलने वाला)

बोहरा - बोहरा, प्रमुख व्यापारिक समुदाय था, जिनकी गुजरात, उज्जैन और बुरहानपुर में काफ़ी संख्या में उपस्थिति थी।

चैत्ती - दक्षिण भारत का प्रमुख व्यापारिक समूह।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें खंड 13.1,(1)
2. देखें खंड 13.1, (3) अनुच्छेद 3
3. देखें खंड 13.1, (3) अनुच्छेद 4
4. देखें खंड 13.2, अनुच्छेद 1 से 4
5. देखें खंड 13.2, अनुच्छेद 5
6. देखें 13.3
7. देखें 13.5, उत्पादन की व्यवस्था के नीचे
8. देखें 13.6, बिन्दु 3
9. देखें खंड 13.6, बिन्दु (3) (क)
10. देखें 13.6, बिन्दु 4 (क)
11. देखें 13.3
12. देखें खंड 13.1, बिन्दु (3)
13. देखें 13.5, उत्पादन की व्यवस्था के नीचे
14. देखें खंड 13.6, बिन्दु (3)
15. देखें खंड 13.7

शब्दावली

आमिल - लगान कार्मिक, परगना स्तर पर लगान एकत्र करने वाला प्रभारी अधिकारी।

अमीन - भूमि का पर्यवेक्षक, लगान मूल्यांकन के प्रयोजन से भूमि का पर्यवेक्षण करता था।

बंजर - अनुपजाऊ भूमि, खेती के लिए अयोग्य

चच्चर - काम उपजाऊ भूमि, इस पर तीन से चार वर्षों में एक बार खेती की जाती है।

चैत्ती - दक्षिण भारत का एक प्रमुख व्यापारी समूह।

दादनी - शिल्पकारी वस्तुओं के निर्माण का एक रूप, जिसमें कारीगर को उस व्यापारी द्वारा कच्चा माल और अग्रिम

धन दिया जाता है, जो इन चीज़ों का व्यापार करता था। एक निर्धारित समय के बाद, व्यापारी तैयार वस्तुओं को ले जाते थे और इन्हें बाजार में बेचते थे।

दाम - मुग़लकाल के दौरान चलने वाले तांबे के सिक्के।

दस्तूर - लगान मंडल; भू–राजस्व मूल्यांकन के प्रयोजन से क्षेत्र का विभाजन, राजस्व मंडलों में करना, हरेक मंडल को दस्तूर कहते थे।

जागीरदार - मुगल राज्य के लिए की गई अपनी सेवाओं के बदले में लगान एकत्र करने का कार्य हासिल वाले लोग (जागीर)

जीतल - दिल्ली सल्तनत की तांबे की मुद्रा (सिक्के) 148 जीतल एक टंका के बराबर थे।

हुंडियाँ - विनिमय पत्र।

कानकुट - लगान मूल्यांकन की एक पद्धति। पहले भूमि को मापा जाता था, इसके बाद उसकी उत्पादकता निर्धारित की जाती थी और मापे गए क्षेत्र के प्रति एकक के अनुसार लगान की मांग निर्धारित की जाती थी।

कारकून - गांव का लिपिक (क्लर्क)

कारख़ाना - शाही कार्यशाला, शाही परिवारों के लिए उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण होता था, और जहाँ पर भाड़े पर लिए गए मज़दूरों की सहायता से इसका काम चलाया जाता था।

खुदकाश्त - धनी/सम द्ध किसान, जो एक बहुत बड़े भूभाग के और क षि संबंधी औज़ारों के स्वामी होते थे।

कुलकर्णी - दक्कन में गांव का लेखाकार।

ख़ुत - सल्तनत काल के धनी किसान।

कारवानीस् - ऐसे व्यापारी जो समूहों में चलते थे और ग्रामीण क्षेत्र से अनाज को ढोने में विशेषज्ञ थे।

खेत बटाई - फ़सल में हिस्सेदारी का एक तरीका जिसमें खेतों की खड़ी फ़सल को, किसान और राज्य के राजस्व एजेंटों के बीच विभाजित किए जाता था।

लंग बटाई - फ़सल में भागीदारी का एक अन्य तरीका; फ़सल की कटाई के बाद इसको छँटाई किए बग़ैर ही इसके ढेर बनाए जाते थे और इनमें राज्य के हिस्से को निर्धारित किए जाता था।

मुक़्क़दम - गांव का मुखिया।

पोलाज - एक श्रेणी की भूमि, जो इस प्रकार की खेती के लिए उपयुक्त थी, जहाँ से वर्ष में दो फ़सलों का उत्पादन लिया जाता था।

परती - एक अन्य वर्ग की भूमि, जिसकी उपजाऊ शक्ति की पूर्ति के लिए, दो फ़सलों के बाद इसे खाली छोड़ना पड़ता था।

पट्टा	-	स्वामित्व–पत्र (टाइटल डीड), राज्य द्वारा प्रत्येक किसान को दिया जाने वाला एक दस्तावेज़ जिसमें किसान क कब्ज़े में दी गई भूमि और उस पर लागू होने वाले लगान की दरें उल्लिखित होती थीं।
पटवारी	-	उत्तर भारत में गांव का लेखाकार।
काबुलियत	-	किसानों से लिया जाने वाला एक सहमति–पत्र, जिसके अनुसार पट्टे की विशिष्टताओं के अनुसार उसे भू–राजस्व देने का वचन देना होता था।
क़ानूनगा	-	परगना स्तर पर लगान एकत्र करने के लिए अधिक त उप–अधिकारी।
रैयत	-	साधारण किसान।
राय	-	फसल के मूल्यों की केंद्रीय सूची।
सर्राफ़	-	मूल रूप से धन के लेन–देन से जुड़ा एक समुदाय; जो धन के विनिमय, बैंकर और हुंडियाँ जारी करने का काम करता था।
टंका	-	दिल्ली सल्तनत का चांदी का मानक सिक्का।
जमींदार	-	जमींदार मध्यस्थों का एक वर्ग, जिन्हें मुग़ल काल में वंशानुगत भूमि स्वामित्व का अधिकार मिलता था।